P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-4* December- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय जेलों के कैदियों का ″जीवन संसार″ जेल में उभरता हुआ एक नया सोपानतंत्र

पवन कुमार मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ

सारांश

प्रस्तुत प्रपत्र भारतीय जेल के कैदियों के हालात पर एक समीक्षात्मक शोध का परिणाम है। यह प्रपत्र भारतीय जेल व्यवस्था में मौजूद समस्याओं को भी स्पष्ट करने का प्रयास करता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद– 14 में सभी को कानून के समक्ष समानता का अधिकार दिया गया है। इसी संदर्भ में माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा भी कैदियों को अनुच्छेद–21 और अनुच्छेद–22 को ध्यान में रखते हुए अनेक अधिकार दिए गए हैं। प्रस्तुत प्रपत्र इन अधिकारों के व्यवहार में प्रयुक्तता पर भी दृष्टि डालने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द : समानता का अधिकार, जिला कारागार, जीवन संसार, सोपानतंत्र, जेल सुधार समिति।

प्रस्तावना

वर्तमान जेल व्यवस्था का जटिल तंत्र वास्तव में कई सौ वर्षों की उपज है। जेल व्यवस्था में मौजूद अमानवीय परिस्थितियों के खिलाफ लंबी लड़ाई लड़ी गई है। इसके खिलाफ सबसे पहले ब्रिटेन के जान हावर्ड ने (1726–1770) आवाज उठाई, उन्होंने जेलों के सुधार को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया (अशर, 1986)। आज यह आश्चर्यजनक लग सकता है किन्तु यह सत्य है कि लगभग 60–70 वर्षों पहले तक जेलों के अधिकारियों और उनके सहयोगियों को कार्य करने के लिए पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था, उनका खर्च कैदियों और उनके रिश्तेदारों से मिले पैसों पर चलता था (रोज़ गार्डन, 1961)।

भारत में भी जेलें मौजूद रही हैं और हैं। भारत में सैकड़ों साल से जेलें अमानवीय व्यवस्था का प्रतीक रही हैं। ब्रिटिश काल में सबको कानून के समक्ष समानता के अधिकार को देने के बावजूद भी भारतीय जेल व्यवस्था पूर्व की तुलना में और क्रूर होती गई। यहां तक कि आजादी के पश्चात् भी हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में कारागार व्यवस्था ब्रिटिश कालीन नियमों से ही संचालित होती है। हालांकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद–14, 21 तथा 22 में यह स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि गिरफ्तार व्यक्ति भी भेदभाव रहित व्यवस्था में ही रखा जायेगा। लेकिन दुर्भाग्य वश व्यवहार में ऐसा दिखाई नहीं देता। न केवल जेल के हालातों पर हुए अध्ययन बल्कि सरकारी आंकड़ें भी यह दर्शाते हैं कि जेल में कैदियों के साथ सामान्य रूप में क्रूर व्यवहार होता है। हालांकि कुछ विशेष कैदी अपनी पहुंच के दम पर अपने लिए जेल में बेहतर व्यवस्था बना लेते हैं।

शोध समस्या,पद्धति एवं अध्ययन का समग्र

लोकतांत्रिक कानूनों की प्रकृति समानता की होती है। जबकि भारतीय समाज में असमानता भी पाई जाती है। अतः जब कानूनों का भारतीय समाज से अन्तःक्रिया होती है तो यह प्रश्न विचारणीय बन जाता है कि क्या भारतीय समाज के असमान हिस्सों को कानून के समक्ष समानता का लाभ प्राप्त होता है? प्रस्तुत प्रपत्र इस प्रश्न को स्पष्ट करने का एक लघु प्रयास है।

इस प्रपत्र के लेखक ने लखनऊ जिला कारागार के बन्दियों पर फील्ड वर्क किया था। यह क्षेत्र कार्य लगभग 225 कैदियों पर किया गया था जिनमें लगभग सभी विचाराधीन कैदी थे। इस शोध कार्य में यह पाया गया कि यह कैदी अपने को जेल की व्यवस्था में मजबूरीवश ही सही लेकिन ढाल लेते हैं। इनमें से ज्यादातर इसे अपनी नियति मान लेते हैं। लेखक द्वारा इस शोध कार्य के तथ्यों की पुर्नसमीक्षा वर्ष 2015 में लखनऊ जिला कारागार के विचाराधीन कैदियों के एक सैम्पल (लगभग 50 कैदी) के ऊपर अध्ययन करके की गई। इस पुर्नसमीक्षा में यह पाया गया कि जो तथ्य पूर्व के अध्ययन में पाये गए थे, लगभग वही इस पुर्नसमीक्षा में भी मौजूद हैं। इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि भारतीय जेल व्यवस्था में कहीं–कहीं पर कुछ विशेष कैदियों के लिए अति विशेष सुविधाएं भी मौजूद हैं।

इस अध्ययन के लिए मूलतः अन्वेशणात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग किया गया है। हालांकि विवरणात्मक शोध प्रारूप भी इस अध्ययन में कहीं–कहीं पर लाया गया है। प्रस्तुत प्रपत्र के अध्ययन का समग्र लखनऊ जिला कारागार है। कारागार में बन्द बन्दियों से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से आंकड़े इकठ्ठे किये गये हैं। हालांकि कुछ अति विशेष कैदियों का वैयक्तिक अध्ययन भी प्रयोग में लाया गया है। इसके अलावा सरकारी आंकड़ों तथा शोध समीक्षाओं के रूप में द्वितीयक आंकड़ें भी प्रयोग में लाए गए हैं।

भारत में जेलों की अमानवीय परिस्थितियों का विस्तृत अध्ययन पहली बार 1919–20 में भारतीय जेल समिति ने किया। अपनी रपट में इस समिति ने "कानूनी बदलाव, सांगठनिक परिवर्तन और कर्मचारियों को प्रषिक्षित" करने की सिफारिश की थी। इसके सुझावों के आधार पर अंग्रेज सरकार ने कानून में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्र लोकतांत्रिक संस्थाओं के निर्माण में संलग्न हुआ, उसी राष्ट्रीय निर्माण की प्रक्रिया में भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञ डब्ल्यू.सी. रेकलेस को जेल प्रशासन संबंधी समस्याओं के अध्ययन के लिए न्यौता दिया। रेकलेस ने 4 वर्ष के अथक श्रम से अपनी रिपोर्ट तैयार की। इसी रिपोर्ट के आधार पर सरकार ने 1957 में "ऑल इंडिया जेल मैनुअल कमेटी" का गठन किया। नेहरू सरकार ने "जेल मैनुअल कमेटी से यह बताने का आग्रह किया कि सुधारगृहों (जेल का नया नाम) के प्रशासन के लिए एक समान ढांचा कैसे बनाया जा सकता है?" यहां यह गौरतलब है कि स्वतंत्र भारत की सरकार ने जेलों को महत्वपूर्ण विचारधारात्मक बदलाव कर "सुधार गृहों" का दर्जा प्रदान किया। इस कमेटी के आधार पर "मार्डर्न प्रिजन मैनुअल" तैयार हुआ। इसके पश्चात 1972–73 में सरकार ने "वर्किंग ग्रुप ऑफ प्रिजन" का गठन किया और फिर 1980 में न्यायविद ए.एन. मुल्ला की अध्यक्षता में भी एक समिति बनाई।

स्वतंत्र भारत की इन सभी समितियों ने हर बार जेल प्रशासन, प्रबंधन व उसकी परिस्थितियों का अध्ययन किया। सभी समितियों ने शिक्षा, पुनर्वास और सुधार को ही कैदियों के सुधार का आधार बिन्दु करार दिया। अपराध को रोकने के इस सम्पूर्ण जेल तंत्र और न्यायिक व्यवस्था के मूल में कैदी/अपराधी के लिए कल्याणकारी ढांचा निर्मित करने का उद्देश्य शुरू से ही स्पष्ट रहा। कोशिश यही थी कि अपराधी को किस तरह आत्मनिर्भर, सम्मानित और कानून का पालन करने वाला व्यक्ति बनाकर समाज को वापस किया जाए (आई.सिंह, 1979)। जेलतंत्र के मौजूदा प्रशासन, प्रबंधन और कैदियों की स्थिति को सरसरी नजर से देखने पर पता लगता है कि इन समितियों के सुझावों पर निष्ठापूर्वक अमल नहीं किया गया। हमारी जेलें सुधारगृह न बनकर आतंक का पर्याय बन गई हैं। जेल से बाहर आने वाली सूचनाएं थोड़े समय हलचल पैदा करती है उसके पश्चात वही ढाक के तीन पात। भागलपुर जेल में हुए आंख फोड़ कांड ने पहली बार समाज को जेल की अमानवीय स्थितियों का अहसास कराया था। इसी तरह 1983 में तिहाड़ जेल पर आई एक विस्तृत रपट में यह जिक्र हुआ कि किस तरह नाबालिग कैदियों पर जेल के भीतर समलैंगिक हमले होते हैं, किस तरह अधिकतर बच्चे यौन–रोगों से ग्रस्त पाए गए? तिहाड़ आज भी कैदियों के सन्दर्भ में उनकी परेशानियों के सन्दर्भ में कमोवेश उसी भयावह स्थिति को प्रस्तुत करता है।

आनंद नारायण मुल्ला ने अपनी रपट में यह उजागर किया था कि........कारागृह में कर्मचारी और बंदी दो दलों में बंटे हुए हैं जो भले ही वास्तव में संघर्शत न हों, किन्तु परस्पर विरोधी अवश्य हैं। कोई भी बंदी इन कर्मचारियों के समक्ष अपना हृदय खोलकर नहीं रख सकता। जेल में जगह की भारी कमी के कारण कैदियों को जेल के विभिन्न वार्ड में भेड़–बकरियों की तरह ठूंसा जाता है। कानूनी सहायता न मिलने के कारण निर्दोश और गरीब लोग कई वर्षों से विचाराधीन कैदी के रूप में बंद पड़े हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक जेल में सजा काट रहे वास्तविक अपराधी को 8 से 9 घंटे काम करने के एवज में मात्र 5 से 6 रुपये दिये जाते थे। जबकि मुल्ला कमेटी की सिफारिषों के अनुसार "काम के लिए बंदियों को बाजार की दर पर पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए।" आज भी तिहाड़ से जुड़ा सबसे आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि जेल इतने वर्षों पश्चात भी मनोचिकित्सक की सुविधा व सलाह नहीं जुटा पाया। विपरीत सिफारिशों के बावजूद महानिरीक्षक (जेल) के पद पर पुलिस अधिकारियों को नियुक्त किया जाता है, समिति ने इस व्यवस्था को अनुचित मानते हुए लिखा था कि "वह सिद्ध दोश अपराधियों को प्रहरियों के पद पर लगाने का भी अनुमोदन नहीं करती, न ही इस व्यवस्था का।"

उदारवादी वर्ग लम्बे समय से कहते रहे हैं कि जेल और चिड़ियाघर का नियंत्रण एक चीज नहीं। किसी भी समाज में जेल सुधारगृहों के रूप में ही अपने कर्तव्यों का सम्यक् निर्वाह कर सकती है। गलतियां या अपराध जिसके कारण समाज या कानून एक व्यक्ति को दण्डित करने का निर्णय लेता है वहां दंड के मूल दर्शन में सजा का प्रावधान सुधार के विचार व प्रयास से नाभिनालबद्ध है। रेनेसां के बाद की व्यवस्था ने समाज में नियंत्रण व सुधार के लिए नियम बनाए हैं। वर्तमान व्यवस्था में बन्दियों के वास्तविक सुधार के प्रयास गुमशुदा हैं, सारी व्यवस्था केवल भय उत्पन्न करने में संलग्न है। वर्तमान सरकार को इन सुधारों के लिए पहल करनी चाहिए। यहां जेल की अंधियारी, सीलनभरी कोठरियों तक सुधार की किरण पहुंचाने के लिए लंबी और बेहद उबाऊ लड़ाई लड़ने वाले सैम्युल रामली (1748–1834) का यह कथन विचारणीय है "सभी प्रकार के दंड और सजाएं अपने आप में बुरे हैं और इन बुराइयों की अनुमति समाज को केवल इसी शर्त पर दी जानी चाहिए कि ये बुराइयां इससे बड़ी बुराई खत्म करने का करार आपसे करें।"

भारत में कारागारों की स्थिति का जायजा लेने के लिए कुछ आंकड़ों पर निगाह डालना आवश्यक हो जाता है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो द्वारा जारी प्रिजन स्टेटिस्टिक्स इंडिया, 2012 के अनुसार देश में कुल 1394 जेलें हैं जिनमें 127 केंद्रीय जेलें, 34 जिला जेलें, 806 उप जेलें, 20 महिला जेलें, 46 खुली जेलें, 21 बोर्स्टल स्कूल, 31 विशेष जेलें तथा 3 अन्य जेलें सम्मिलित हैं। इनमें

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-4* December- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

क्रमशः 1,46,648 (42.7%), 1,26,110 (36.7%), 18,474 (14.1%), 4,817 (1.4%), 4,028 (1.2%), 2,438 (0.7%), 10,331 (3.0%) तथा 323 (0.1%) कैदी क्षमता है। इस प्रकार देश की समस्त जेलों में 3,43,169 कैदी रह सकते हैं जबकि 31 दिसंबर, 2012 को इन जेलों में 3,85,135 अर्थात 112% कैदी रह रहे थे। विगत कई वर्षों से यही स्थिति बनी हुई है। सबसे दुःखद पक्ष यह है कि कुल कैदियों में 66.2% (2,54,857) विचाराधीन कैदी थे जबकि 33.2% (1,27,789) सजा प्राप्त कैदी थे। अतः कहा जा सकता है कि तंत्र की शिथिलता के चलते बहुत से व्यक्ति अनावश्यक रूप से जेलों में बंद हैं। सन् 1958 में बनी तिहाड़ जेल की क्षमता शुरूआत में मात्र 1273 कैदियों की थी जो अब छः हजार की है लेकिन यहां प्रायः 12 हजार कैदी बंद रहते हैं। जेलों में छत्तीसगढ़ में सर्वाधिक 252% भीड़ है जो दिल्ली में यही आंकड़ा 194% है।

दिसम्बर 2015 तक के आंकड़ों के अनुसार देश की विभिन्न 1401 जेलों में 4,19,623 कैदी थे। इसमें पुरुष कैदियों की संख्या 4,01,789 और महिला कैदियों की तादाद 17,834 थी। यानि कुल कैदियों में 95.7% पुरुष और 4.3% महिलाएं हैं। इनमें छः हजार से ज्यादा विदेशी कैदी भी शामिल हैं। यह संख्या जेलों की निर्धारित क्षमता से काफी ऊपर यानि 114.4% है। अर्थात् 2012 से 2015 के बीच जेलों की निर्धारित क्षमता से ज्यादा कैदियों के रहने का प्रतिशत 112% से 114.4% हो गया। यही तथ्य यह बताने को पर्याप्त है कि दिन ब दिन भारतीय जेलों में हालात भयावह होते जा रहे हैं। उपर्युक्त दोनों आंकड़ों का विश्लेषण किया जाए तो यह पाया जाता है कि भारतीय जेलों में मौजूद कैदी बेहद खराब हालात में रह रहे हैं और ऐसे में इनके मानवाधिकार कैसे सुरक्षित रह पाते होंगे, यह एक बड़ा सवाल है।

मुकुल मुदगल (1996) अपने इस लेख में भारतीय जेलों में बन्द कैदियों के अधिकारों के संबंध में चर्चा करते हुए स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार एक कैदी अपने आप को निराशा व अवसादग्रस्त पाता है। जब वह जेल वार्डेन से अपने सीमित अधिकारों व अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने का प्रयास करता है क्योंकि जेल वार्डेन 'जेल कानूनों' को न मानकर 'स्वयं' को ही कानून मानता है। कई बार ऐसा भी देखने में आता है कि कैदियों को अपने अधिकारों के संबंध में जानकारी ही नहीं होती है और ऐसा होना जेल की शक्ति को और निरंकुश बना देता है। मुदगल लिखते हैं कि सुनील बत्रा टे दिल्ली प्रशासन (1978) के केस में सुप्रीम कोर्ट ने कैदियों के लिए कई तरह के अधिकारों की बात की, जिनमें जेल नियमों की पुस्तिका का कैदियों के मध्य वितरण, जेल बुलेटिन का प्रकाशन इत्यादि प्रमुख थे। किन्तु, व्यवहार में इन नियमो की अनदेखी की गई। इसके अतिरिक्त, मुदगल इस बात को भी उठाते हैं कि साधारणतया प्रत्येक कैदी या अपराधी को 'हथकड़ी' पहना दी जाती है, हालाँकि सुप्रीम कोर्ट के अनुसार 'हथकड़ी' पहनाना अन्तिम विकल्प होना चाहिए। इसके साथ ही वह जेल कस्टडी में होने वाली 'मृत्यु' को भी अपनी चर्चा का बिन्दु बनाते हैं। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यदि कैदी की कस्टडी में मृत्यु होती है तो इसकी क्षतिपूर्ति कैदी के परिवार को सहायता देकर की जानी चाहिए। वह लिखते हैं कि चूँकि अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्ति, अनुच्छेद 32 की उच्चतम न्यायालय की शक्ति से व्यापक है। अतः कैदियों को प्रथमतः उच्च न्यायालय की ही शरण लेनी चाहिए, चाहे वह मूलाधिकारों की बात हो या जनहित याचिका की। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, शीघ्र ही जेल कैदियों के अधिकारों के संबंध में एक 'मॉडल प्रिजन कानून' लाने वाला है। देखना यह है कि 'राज्य' इस तरह के कानूनों को किस स्वरूप में स्वीकार करता है। लेकिन इतना तो तय है कि ऐसा कानून आने के बाद कैदियों की राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तक पहुँच आसान हो जायेगी।

अनन्या दासगुप्ता (1996) अपने इस लेख में जिक्र करती हैं कि कारागारों व उनकी अमानवीय दशाओं के संबंध में बहुत लिखा गया, लेकिन इस संबंध में लोगों का ध्यान कम गया कि कारागार से मुक्ति के पश्चात एक कैदी की सामाजिक व मानसिक स्थिति किस प्रकार की होती है। वह लिखती हैं कि कोई कैदी कारागार में जितना लम्बा समय गुजारता है, समाजशास्त्रीय व मनोवैज्ञानिक दोनों ही रूपों में, उसके व्यक्तित्व की उतनी ही हानि होती है। विशेष रूप से, यदि कैदी किशोरावस्था में है, तो यह प्रभाव उतना ही व्यापक होता है। इस संबंध में वह, कई कानूनों का हवाला देते हुए After Care Homes (ACHs) का जिक्र करती हैं। सिद्धान्ततः जब कोई अपराधी, विशेषतः किशोर अपराधी जेल की संस्था से मुक्ति पाता है तो उसे एक निश्चित समय के लिए ACH में भेजे जाने का प्रावधान है, ताकि वह पुनः अपने आपको समाज के मूल्यों के मानदण्डों के अनुरूप सामाजीकृत कर सके। एक प्रकार से ये ACHs पुनर्सामाजीकरण की संस्थाएं हैं। किन्तु, व्यावहारिक जीवन में इसका अभाव है। 'दिल्ली' जैसे शहर में मात्र 2 ACH हैं, एक लड़कों के लिए व एक लड़कियों के लिए। किन्तु इन ।CH की दशा भी बहुत खराब है। इनके 'भवन' की स्थिति दयनीय है व उनमें रहने वाले लोगों को दिन–प्रतिदिन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

वास्तव में जेलों में व्याप्त तनाव दूर करने के लिए ऐसे कर्मियों की सख्त आवश्यकता है जो नई कार्य–प्रणालियों में प्रशिक्षित हों। सर्वोच्च न्यायालय के वकीलों का एक समूह वर्तमान अमानवीय परिस्थितियों की मुख्य वजह जेल अधिकारियों की चयन प्रणाली को मानता है। मौजूदा जेल व्यवस्था में वार्डन का जेल कैदियों के साथ सहयोग करना लगभग असंभव है। वर्तमान जेल व्यवस्था के कुछ हिस्से का आधार है 1894 में पारित प्रिजन एक्ट, जो बदले हालातों में अनुपयुक्त और अप्रासंगिक हो गया है। कानून में किया कोई भी परिवर्तन इस खराब व्यवस्था की सतह तक सीमित रह जाता है। चूँकि जेल का सुधार अन्य तीन प्रणालियों से अन्तर्संबंधित है विधानमंडल, पुलिस और न्यायपालिका। अतः यही कारागार में वास्तविक सुधार का आधार बन सकते हैं। अपराधियों और विचाराधीन कैदियों पर कार्यवाही भारतीय दंड संहिता 1860, व्यवहार विधि संहिता 1898 आदि के आधार पर चलाई जाती है जो काफी पुरानी पड़ गई है। विचाराधीन कैदियों की वर्तमान दशा की जिम्मेवारी

न्यायपालिका की है। कैदियों के अपराध को देख निर्णय तुरंत होने चाहिए। विधि ने कैदी को दंड देने के प्रावधान के अंतर्गत उसकी आजादी अवश्य छीनी है पर मौलिक अधिकार नहीं।

मिश्र (2016) के अनुसार जेल का सम्पूर्ण वातावरण बंदियों के लिए दो भिन्न किस्म के "सामाजिक विश्व" का निर्माण करता है। एक तो उनके लिए जिनके पास पैसा, राजनैतिक प्रभाव तथा बाहुबल है, एवं दूसरा उनके लिए जिनको आम कैदी की श्रेणी में रखा जाता है।

जेल में पैसा, राजनैतिक प्रभाव तथा अवैध शक्ति अलग–अलग अथवा संयुक्त होकर ही न केवल सम्पूर्ण मानवीय गरिमा के साथ जेल के वातावरण में जीवन व्यतीत कराती हैं बल्कि कुछ अवैध सुविधाएं भी उपलब्ध कराती हैं। जेल का वातावरण एक नये प्रकार की स्तरीकृत व्यवस्था का निर्माण करता है जिसको निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है –

1- जेल की व्यवस्था में सबसे उच्च स्थान उन बंदियों को प्राप्त है जिनके पास उच्च आर्थिक स्थिति, सत्ता पक्ष से संबंधित होना तथा अवैध शक्ति, यह तीनों तथ्य मौजूद हैं।
2- दूसरे स्थान पर वह लोग हैं जिनके साथ अवैध शक्ति, उच्च आर्थिक स्थिति एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि (जो कि सत्ता पक्ष से नहीं जुड़ी है) मौजूद है।
3- तीसरे स्थान पर वे बंदी आते हैं जो अवैध शक्ति तथा उच्च आर्थिक स्थिति को धारित करते हैं।
4- चतुर्थ स्थान उन बंदियों का है जिनके पास केवल उच्च आर्थिक स्थिति अच्छी है।
5- पांचवा स्थान उन बंदियों का है जो मध्यम आर्थिक स्थिति से जुड़े हैं।
6- छठवां स्थान उन बंदियों का है जिनके पास उपर्युक्त कोई भी तथ्य मौजूद नहीं है। इनको आम बंदी कहा जा सकता है।

जेल में बिना टिकट ट्रेन में चलने के अपराध में बंद कैदियों का षोशण सर्वाधिक होता है। इनसे न केवल विभिन्न किस्म के कार्य लिये जाते हैं, बल्कि इन्हें माफिया बंदियों के हाथ–पैर भी दबाने पड़ते हैं। आम कैदी सिपाहियों की गाली–गलौज तथा मारपीट को स्वीकृत हुआ मानकर चलते हैं। अपने आपको संतोष देने के लिए "गलती हुई तो मार तो खायेंगे ही", "जेल है भैया, घर नहीं" इत्यादि वाक्यों से स्वयं का अनुकूलन जेल के वातावरण से बना लेते हैं।

आम कैदियों को विभिन्न किस्म की सजाएं प्रायः दी जाती हैं। इन सजाओं में दौरा खुलना (रोज बैरक बदल देना), तन्हाई में भेजना, तलुवा परेड (कैदी को लिटाकर उसके तलुवों पर लाठी मारना), पलटैया इत्यादि उल्लेखनीय है। जेल मैनुअल विचाराधीन कैदियों से कार्य लेने को स्पष्ट रूप से मना करता है। यदि कोई कैदी स्वेच्छा से कार्य करना चाहता है तो उसे 10 रु0 प्रतिदिन का भुगतान किये जाने का नियम है। लेकिन आम कैदियों के मामले में यह नियम अर्थहीन हो जाता है। उनसे जबरदस्ती कार्य कराया जाता है। भुगतान के संबंध में उनको कोई जानकारी भी नहीं होती।

मिश्र (वही) के अनुसार षिक्षा एवं सामाजिक प्रतिश्ठा जैसे तथ्य मानवाधिकारों को सुरक्षित रखने में कारगर साबित नहीं होते। कुछ आयुर्वेदिक चिकित्सकों के वैयक्तिक अध्ययन स्पष्टतया इस तथ्य को दर्शाते हैं। हालाँकि जिन बंदियों को अपने अधिकारों एवं जेल नियमों के संबंध में कोई जानकारी यदि है भी तो उसे प्रशासन के आतंक के भय से छुपा जाते हैं। वे कैदी जिनके साथ पुलिस हिरासत में मारपीट की गई थी, उन लोगों ने भी जज के सामने यह तथ्य नहीं रखा। कुल 4 कैदियों ने यह तथ्य रखा भी तो जज ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया, मिश्र (वही)।

लखनऊ जिला कारागार में अत्यधिक भीड़ है। संख्या से अधिक भीड़ बैरकों की हालत को नारकीय बना देती है। बाथरूम की दशा वैसे ही खराब है, ज्यादा भीड़ उसे दयनीय बना देती है। सर्किल में केवल एक नल है। सर्किल के सारे बन्दियों को पानी की अत्यधिक शिकायत है।

जेल का खाना काफी खराब होता है। जेल प्रशासन एवं आम बंदी इस खराब खाने को अपनी सजा का हिस्सा मान लेते हैं। उनके अनुसार "गलत काम करने पर सजा तो मिलेगी ही, जेल में घर के खाने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए"। रोटियां जानबूझ कर कच्ची रखी जाती हैं ताकि उनका वजन ज्यादा रहे। केवल कच्ची रोटी की वजह से ही लगभग समस्त आम बंदी पेचिश के षिकार हैं। जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है वे लोग अपना खाना अलग करा लेते हैं। लेकिन आम बंदी खराब खाने की सजा झेलने को अभिशप्त हैं।

जेल की बैरकों का 30 प्रतिशत हिस्सा खुला होता है, जो लोहे की सरिया से बन्द किया गया होता है। जाड़ा और बरसात का मौसम बंदियों पर काफी भारी पड़ता है। जाड़े में ठंड, बरसात में कीड़े यह दो प्रमुख समस्या बनी रहती है। गर्मी में लू भी एक प्रमुख समस्या बन जाती है। ठंड के मौसम में दो कंबल दिये जाते हैं जो किसी भी बंदी के लिए अपर्याप्त होते हैं। यहां भी जेल के स्तरीकृत व्यवस्था, कानून के समक्ष समानता के सिद्धांत पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। जिनके पास पैसा, राजनैतिक प्रभाव, अवैध शक्ति है, वे लोग पर्याप्त संख्या में कंबल पा जाते हैं अथवा बाहर से मंगा लेते हैं। लेकिन आम बंदी ऐसा नहीं कर पाते।

अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव, निम्न आर्थिक स्थिति, किसी प्रकार के राजनैतिक सम्पर्क का होना, यह वे कारक हैं जो जेल की सामाजिक दशा में आम कैदियों की मानवाधिकारों की स्थिति को अत्यन्त भयावह बना देते हैं। ऐसे में यह प्रश्न महत्वपूर्ण बन जाता है कि आम बंदियों के मानवाधिकारों का उल्लंघन कैसे रुके? यहाँ मुख्य मुद्दा उनके मानवाधिकारों को सुरक्षित रखने का हो जाता है।

कटारिया (2014) के अनुसार चूंकि भारतीय जेलों में दो–तिहाई कैदी विचाराधीन कैदियों की श्रेणी में हैं तथा इससे न केवल मानवाधिकारों का हनन होता है बल्कि जेलों की आधारभूत संरचना सुविधाएं भी चरमरा जाती हैं। सर्वोच्च न्यायालय तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग कई बार सरकार को निर्देश दे चुके हैं कि उन विचाराधीन

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-4* December- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

कैदियों को जेलों से रिहा किया जाए जो अपनी संभावित अधिकतम सजा जितनी अवधि जेलों में बिता चुके हैं। सन् 2006 में दंड प्रक्रिया संहिता में धारा '436ए' के माध्यम से विचाराधीन कैदियों की जेल की समय सीमा तय कर दी गई है। इसके बावजूद भी जिला स्तरीय समीक्षा समितियां गठित नहीं हुई हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक अधिकारियों से कहा है कि वे सप्ताह में एक बार अधीनस्थ जेलों का निरीक्षण करें तथा विचाराधीन कैदियों को चिह्नित करें।

निष्कर्ष

कटारिया (वही) के अनुसार दरअसल, भारतीय विधि एवं न्याय व्यवस्था की संपूर्ण कार्यप्रणाली ही निष्प्रभावी है। सर्वोच्च न्यायालय 'बेल, नोट जेल' कहता है तो अधीनस्थ तंत्र 'जेल, नोट बेल' को ब्रह्यवाक्य मानता है। नौकरशाही का अहं इतना अधिक है कि वह स्वयं को आमजन से पृथक् एवं उच्च मानती है। चाहे चिकित्सालय हों या विद्यालय या फिर कारागार जहां भी लाभार्थी सेवाएं लेने आता है या जनता को प्रशासन से कार्य होता है, लोक सेवकों के तेवर बदल जाते हैं। जेल सुधार हेतु यह आवश्यक है कि जेल सर्विस को पेशेवर शैली में ढाला जाए तथा प्रथम सुधार के रूप में विचाराधीन कैदी रिहा किए जाएं और सजा प्राप्त तथा विचाराधीन कैदियों की जेलें पृथक् हों। वस्तुतः जेल अपने आप में एक 'समुदाय' है। महात्मा गांधी का कहना है कि "अपराध, बीमार मस्तिष्क का परिणाम है अतः कारागार में वह वांछनीय होना चाहिए जो इन बीमार मस्तिष्कों का उपचार कर सके।" स्थिति ठीक इसके विपरीत है। देश की जेलों में बंद कुल कैदियों में से 1.5 प्रतिशत कैदी मानसिक रोगी हैं। क्या ऐसे रोगियों को विशेषज्ञ अस्पतालों में होना चाहिए या सुविधाहीन काल कोठरियों में? प्रश्न मानवाधिकारों का है। कैदी को हेय दृष्टि से देखना अपने आप में अपराध है। सरकार, समाज तथा न्यायपालिका सभी को यह समझना होगा कि कैदी का भी आत्म–सम्मान है एवं उसके मानवाधिकार भी हैं। लोकतांत्रिक सरकार तथा कल्याणकारी राज्य का प्राथमिक दायित्व प्रत्येक आंख से आंसू पोंछना ही है कटारिया (वही)।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कपूर, केवल : जेल सुधार समिति और सुधार, हिन्दुस्तान, 20.02.2008, लखनऊ*
2. *प्रिजन स्टेटिस्टिक्स इंडिया 2012, राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, 2013*
3. *भारत में पुलिस संगठनों के आंकड़े, (1 जनवरी, 2013 की स्थिति), पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, 2013*
4. *मिश्र, पवन कुमार : मानवाधिकार : संवैधानिक प्रावधान एवं वास्तविकता, एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण, सत्यम प्रकाशन नई दिल्ली, 2016*
5. *नेशनल पालिसी आन प्रिजन रिफोर्म्स एंड करैक्शनल एडमिनिस्टेशन, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2007*
6. *कटारिया, सुरेन्द्र : भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014*

1. *Advani, L.K.: A prisoner's scrap-book. New Delhi: Arnold-Heinemann, 1978*
2. *Asher, Geoff: Custody and control: the social worlds of imprisoned youth. London: George Allen and Unwin, 1986*
3. *Bakshi, Upendra : An Unfought battle for human dignity : Seminar 439, March 1996, Published from F-46, Malhotra Building, New Delhi*
4. *Bhattacharya, B.K.: Prisons. Calcutta: Sarkar, 1970*
5. *Gupta, Ananya Das : Little Expectations: Seminar 439, March 1996, Published from F-46, Malhotra Building, New Delhi*
6. *Model Prison Manual for the Supritendence and Management of Prison in India, Police Anushandhan evam Vikas Bureau, Home Ministry, Govt. of India, 2003*
7. *Mudgal, Mukul: Do Prisoners have right? Seminar 439, March 1996, Published from F-46, Malhotra Building, New Delhi*
8. *Narayan, Jayaprakash : Prison diary, New Delhi: Popular Prakashan, 1977*
9. *Rose, Gordon: Struggle for penal reform. London: Stevens and Sons, 1961*
10. *Singh, I: Prison: a sociological inquiry. Delhi, 1979*